Vagdhara: A Multilingual Peer Reviewed Research Journal (ISSN 2839-6197)
Vol. 1 No. 3 (2026): April-June; Website: https://vagdhara.in/index.php

देवशीष पाणिग्राही का कथासंसार: विमुग्ध विन्यास

***डॉ. शरत कुमार जेना**

*सहायक प्रोफेसर, ओडिया विभाग, विश्वभारती विश्वविद्यलय, शांतिनिकेतन

Received: August 30, 2026 *Accepted: November 07, 2026*

शोध सार

कथाकार देवशीष पाणिग्रही के सामाजिक, साहित्यिक और व्यक्तिगत जीवन के बीच कोई फर्क नहीं है। उनके व्यक्तिगत जीवन में जो खोजें और उपलब्धियाँ थीं, और जिन बौद्धिक सवालों का वे सामना करते थे, वे सभी उनके कथालेखन में प्रतिबिंबित होते हैं। वे अपनी कहानियों में एक समग्र विचारधारा और मूल्य प्रस्तुत करना चाहते थे, जो हमेशा प्रासंगिक, नया और युग के अनुरूप हो। इक्कीसवीं सदी के व्यक्ति को जो अनेक प्रकार के संकट, संघर्ष, मानवीय मूल्यबोध का ह्रास, व्यक्तित्व की दोलायमान स्थिति, मानसिक विश्लेषण आदि से जूझना पड़ता है - उन्हें तथ्य व तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना उनके कथाशिल्प की मुख्य ध्वनि रही है। मध्यमवर्गीय परिवार और मध्यवय जीवन की मानसिकता को चित्रित करने के साथ-साथ प्राच्य मानसिकता और आध्यात्मिक अन्वेषणबोध को लेकर उनका कथाशिल्प अत्यंत विविधतापूर्ण रहा है।

शब्द : कथा साहित्य, समकालीन कथा, मध्यमवर्गीय परिवार, ग्रामीण और शहरी परिवेश, आकस्मिक अंत और शुरुआत।

तरुण अवस्था से ही गद्य साहित्य में असाधारण सिद्धि प्राप्त करने वाले कथाकारों में देवशीष पाणिग्राही प्रमुख हैं। क्योंकि मात्र 37 वर्ष की आयु में उनका 'तथाकथित' नामक कहानी संग्रह ओडिशा साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हुआ था। साहित्य के विभिन्न विधाओं में लेखनी चलाने के बावजूद वे मुख्यतः एक कथाकार थे। इक्कीसवीं सदी के व्यक्ति को जो अनेक प्रकार के संकट, संघर्ष, मानवीय मूल्यबोध का ह्रास, व्यक्तित्व की दोलायमान स्थिति, मानसिक विश्लेषण आदि से जूझना पड़ता है - उन्हें तथ्य व तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना उनके कथाशिल्प की मुख्य ध्वनि रही है। मध्यमवर्गीय परिवार और मध्यवय जीवन की मानसिकता को चित्रित करने के साथ-साथ प्राच्य मानसिकता और आध्यात्मिक अन्वेषणबोध को लेकर उनका कथाशिल्प अत्यंत विविधतापूर्ण रहा है। 'तथाकथित' (2000), 'अतींद्रिय' (2004), 'परिव्राजक' (2006), 'अन्यमनस्क' (2007), 'अभिभावक' (2010), 'शुभकामना' (2012), 'सुरमहल्ला' (2012), 'द्राघिमा' (2013), 'अनामिका' (2013), 'रासेश्वरी' (2018) और 'शुभदा' (2021) जैसे कथा संग्रह उनके रचना संसार के समृद्ध हस्ताक्षर हैं। इसी प्रकार उनकी रचित 'अयमारंभ' (2008), 'फोन डायरी' (2008), 'आगधाड़ी र लोक' (2011), 'पहाड़ पछ र जन्ह' (2011), 'पतर फांक रे सूर्य' (2012), 'राग चारुकेशी' (2014), 'भिन्न षडज' (2014), 'नील झन्ह र राती' (2014) आदि उपन्यासों ने ओड़िआ कथाजगत को अधिक व्यापक और समृद्ध बना दिया है।

कथाकार देवशीष का जन्म 29 अगस्त 1965 को बालेश्वर के नीलगिरि क्षेत्र के सानाअता गाँव में हुआ था। उनके पिता वृंदावनचन्द्र पाणिग्राही एक आदर्श, नीति-निष्ठ सरकारी प्रशासक थे लेकिन साथ ही वे एक सृजनशील व्यक्तित्व भी थे। भुवनेश्वर की 'यूनाइटेड आर्टिस्ट' संस्था तथा बालेश्वर की 'स्रष्टा' नाट्य संस्था से वे सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे। उनकी माता सौदामिनी देवी एक शिक्षिता और साहित्यप्रेमी महिला थीं, जो बंगला और हिंदी साहित्य की अनेक पुस्तकें पढ़ती थीं। इस प्रकार की एक साहित्य और संस्कृति संपन्न परिवार में बाल्यजीवन बिताकर देवशीष ने अपने अंदर की सृजन चेतना को विकसित किया। ग्यारह-बारह वर्ष की आयु में उनकी पहली कविता 'सुचरिता' पत्रिका में और रेवेंसा कॉलेज में पढ़ाई के दौरान उनका पहली कहानी 'जागराण' में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद वे फिर पीछे मुड़कर नहीं देखे। उन्होंने रेवेंसा विश्वविद्यालय से एम.ए., जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से एम.फिल. अध्ययन किया और सिविल सर्विस परीक्षा में ओड़िआ विषय रखकर सफलता प्राप्त की।

बाल्य और किशोर जीवन नीलगिरि में बीतने के कारण नीलगिरि की अनेक स्मृतियाँ उनके कथा साहित्य में दृष्टिगोचर होती हैं। पारिवारिक जीवन की साहित्य-संस्कृति से प्राप्त प्रेरणा और नीलगिरि की मिट्टी की ऐतिहासिक प्रेरणा ने उनके लेखक जीवन में असीम आह्वान भर दिया । इसलिए, अपने बाद के व्यावसायिक जीवन में, उन्होंने साहित्य साधना को अपने जीवन पथों में से एक के रूप में चुना।। लेखकीय जीवन के प्रारंभिक दौर में कविता और गीतिकविता की रचना करने के बावजूद गद्य साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने अपनी विशेष सिद्धि प्राप्त की।उनके अनुसार - "कविता, गीतिकविता से कहानी या उपन्यास और लघु उपन्यास तक, पद्य से गद्य की यात्रा मेरे लिए पूरी तरह से एक अचेतन और अनजानी यात्रा रही। अब,

जरूर, पिछले कुछ वर्षों से मैंने कविता लिखना बंद कर दिया है और मुख्यतः एक कथाकार की पहचान मुझ पर हावी हो गई है। पत्र-पत्रिकाओं के संपादक जब मुझसे अधिक संख्या में कहानियाँ माँगते हैं, तो शायद उसी कारणवश मैंने सचेत रूप से अधिक कहानियाँ लिखने का प्रयास किया।"[1]

गौर करने पर ज्ञात होता है कि कथाशिल्पी देवाशीष भारतीय पुलिस सेवा के एक वरिष्ठ अधिकारी होने के बावजूद, वह अनुशासित जीवन के भीतर बँध कर रहने को पसंद नहीं करते थे। सरल, सच्चे, नीतिनिष्ठ और निरहंकारी जीवन जीने वाले देवाशीष का अंतर्मन साहित्य के प्रति पूर्णतः समर्पित था। उनके आचरण और वाणी में साहित्य की वह समदर्शिता विद्यमान थी। लिखने के कई कारणों में से एक कारण है - उनके मन में जन्म लेने वाले कुछ भाव, चरित्र या घटनाओं को जीवंत रूप देने की इच्छा और उस जनित पीड़ा से क्षणिक मुक्ति प्राप्त करना। जीवन के बारे में उनका कथन है - "अपने जीवन के अनुभावों से मैंने सीखा है कि मनुष्य के जीवन में कुछ भी प्राप्त होने योग्य नहीं है। क्योंकि जीवन गणित नहीं है, इसमें ज्यामिति के स्वतः सिद्ध उपपादों की तरह कोई निश्चितता नहीं होती। जिसे जो को प्राप्त हुआ है, वही उसकी निर्धारित नियति है। मैं पूरी तरह भाग्यवादी नहीं हूँ, लेकिन प्रारब्ध और भविष्य में विश्वास रखता हूँ। नियति का अदृश्य निर्देश ही किसी के जीवन-मानचित्र की रूपरेखा तय करता है। इसी प्रकार एक पूर्वनिर्धारित जीवन के चित्रनाट्य या 'लाइफ स्क्रिप्ट' को लेकर मेरे मन में एक दृढ़ धारणा विद्यमान है।"[2] जीवन की इसी प्रकार की अंतरंग और सत्यशील अभिव्यक्ति उनके कथा-शिल्प में अनेक रूपों में परिलक्षित होती है। उनके कथा और उपन्यास जीवनवाद की विविध दिशाओं को उजागर करते हैं।

देवाशीष का कथा-संसार दोनों - ग्रामीण और शहरी - परिवेश को लेकर विस्तृत है। आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रिया में कदम रखने से मनुष्य की भावभूमि और वातावरण में जो युगांतरकारी परिवर्तन आया, उससे पूरा विश्व एक 'विश्वग्राम' या 'ग्लोबल विलेज' में बदल गया। विज्ञान और प्रौद्योगिकी विशेषकर संचार के क्षेत्र में सुसंगठित सूचना क्रांति के माध्यम से भौगोलिक और सांस्कृतिक सीमाओं का कोई अर्थ नहीं रह गया। इस वैश्विक प्रक्रिया का प्रभाव देवाशीष की कथा-सृष्टि में बहुधा परिलक्षित होता है। आधुनिक मनुष्य की ग्रामीण जीवन से विमुखता, शहरी जीवन की ओर आकर्षण, शहरी जीवन की कठोर यथार्थता से सामना करके फिर एक बार ग्रामीण मानसकता की ओर लौटने की आकांक्षा - यही उनकी कहानियों की मूल आधारभूमि है। जीवन और जगत को खोजते हुए भी उन्होंने कभी मिट्टी और संस्कृति को नहीं भुलाया। इसलिए उनके कथा-नायक चाहे जितना भी पश्चिमाभिमुख क्यों न हो, परिणामस्वरूप वे ग्रामाभिमुख हो जाते हैं और प्राच्य दर्शन में दीक्षित हो जाते हैं। अपनी संस्कृति को भुला देने की असहायता उन्हें लगातार कचोटती रहती है। उसी असहायता में ही ग्रामीण मानसकता की एक श्रद्धाभरी दृष्टिकोण निहित है। 'बग और गेन्डुफूल' कहानी इसका एक सार्थक उदाहरण है। गाँव का आम बगान, खेत खलियान, गौशाला आदि प्राकृतिक गोद में बाल्यकाल बिताने वाला कहानी का नायक, जीवन-जीविका की मजबूरी में अमेरिका चला गया था, फिर भी वह अपना गाँव नहीं भूल पाया।अपने पितरों की संपत्ति को बेचने की पीड़ा में वह जैसे मरणासन्न हो उठे थे। कथानायक की वाणी में - "तो यही है मेरे पूर्वजों की कमाई हुई संपत्ति। कितनी बहुमूल्य वस्तुएँ हैं जिन्हें हम आँखे मूँद कर, औने-पौने दाम में बेच डालते हैं। × × क्या कोई मूल्य हो सकता है उन स्मृतियों का जो पितृसंपत्ति से जुड़ी हैं, उन भावनाओं का जो पूर्वजों की वंशपरंपरा से संबंधित हैं?"[3] इसी तरह की ग्रामीण संवेदनाओं की प्रतिध्वनि 'समय र अंधकूप', 'क्यों मुक्ति', 'अभावित' जैसी अनेक कहानियों में सुनाई देती है।

देवशीष की कहानियों में व्यक्तिनिष्ठता के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी सशक्त रूप में उभर कर सामने आती है। विगत दो दशकों में समाज जिस तरह से बदला है, और यांत्रिक सभ्यता के प्रभाव में नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षरण जिस प्रकार हुआ है - उसे वे मार्मिक ढंग से चित्रित करते हैं। वे सामाजिक दृष्टिकोण रखने वाले लेखक हैं, फिर भी अपनी स्वतंत्र दृष्टि और वैचारिक स्पष्टता को कभी नहीं छोड़ते। अतः उनके कथानकों में लेखक की आत्मिक अनुभूति समानांतर रूप से प्रकट होती है। जैसे 'वैलेन्टाइन डे' में प्रेम का महत्व, 'कोरोना और कुहुतान' में करोना महामारी का भयावहता, और 'सीमान्त यात्रा' में पंजाब की संस्कृति और परिवेश का सजीव चित्रण - ये सभी उनके गहरे व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण को दर्शाते हैं।

देवशीष के कथा-संसार में वैश्वीकरण, बाजारवाद और सोशल मीडिया जैसे आधुनिक कारकों का व्यक्ति, समाज और आपसी संबंधों पर कैसा प्रभाव पड़ता है - उसका सशक्त चित्रण मिलता है। हर युग में सर्जक अपने समय और समाज के सजग प्रहरी होते हैं। देवशीष ने भी वैश्विक परिवर्तनों से उत्पन्न नवीन कथावस्तु और पात्रों की पीड़ा को शब्द दिया है। उन्होंने इन पात्रों की विवशता को देखा है और उसे दूर से नहीं, बल्कि जीवन के भीतर उतरकर, आत्मिक रूप से अनुभूत किया है।

आज का मनुष्य मोबाइल, लैपटॉप, इंटरनेट जैसे यांत्रिक माध्यमों से नए रिश्ते जोड़ने का प्रयत्न कर रहा है - इसकी सजीव प्रस्तुति 'शुभदा' संग्रह की 'नववर्ष' कहानी में देखी जा सकती है। वहाँ लेखक ने अपने बचपन की स्मृतियों को वर्तमान की चकाचौंध भरी नववर्ष की संस्कृति से तुलना करते हुए मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। 'चिरंतनी', 'संतान', 'चित्रांगदा को चिट्ठी', 'प्रेम पाई दिन टिए ' जैसी कई कहानियों में भी वैश्वीकरण से उपजी वैचारिक गूंज स्पष्ट सुनी जा सकती है।

देवशीष की कहानियों का मूल केंद्र जीवन है। जीवन के विविध पक्षों को लेकर उनकी कथाएँ गतिशील बनती हैं। जीवन की खोज में उनके पात्र अक्सर एक यात्रावृत्ति धारण कर लेते हैं, जैसे हर व्यक्ति जीवन में एक परिव्राजक हो। हर इंसान स्वप्न देखता है - और स्वप्न देखने के लिए कोई बंधन

नहीं होता। कुछ स्वप्न पूरे होते हैं, कुछ अधूरे रह जाते हैं। यही अधूरे स्वप्न जीवन को पीड़ा से भर देते हैं। इन कहानियों में यह भी देखा जा सकता है कि जीवन की राहों पर चलता व्यक्ति किस प्रकार वास्तविकता का सामना करता है, किस तरह वह असहायता को गले लगाता है। 'जने नारी र आत्मकहानी', 'समय र अंधगाली' और 'परिव्राजक' आदि कहानियाँ इस अंतर्मन की यात्रा और जीवन की मनस्तव को प्रतिबिंबित करती हैं।

देवाशीष मध्यमवर्गीय और मध्यमवयस्क जीवन के विश्लेषण में दक्ष कथाशिल्पी थे। उनके अधिकतर कथाओं में जो पात्र हैं, वे या तो उनकी ही आयु के होते हैं या फिर उससे दस-पंद्रह वर्ष छोटे-बड़े। इसलिए समवयस्क पात्रों के मनोविज्ञान को समझने और उन्हें गहराई से विश्लेषित करने में उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि, चिंतनशील प्रवृत्ति और भावनात्मक गहराई का भरपूर उपयोग किया है। यही कारण है कि उनके पात्रों की मानसिक स्थिति अक्सर लेखक के अनुभवों के समानांतर प्रतीत होती है।

यद्यपि उनके लेखन में पाश्चात्य संस्कृति, जीवनशैली और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्थान मिला है, फिर भी भारतीय संस्कृति और जीवनमूल्यों के प्रति उनकी गहन आस्था स्पष्ट झलकती है। उनके पात्र जीवन की अपरान्ह बेला में प्राच्य चेतना की ओर लौटते हैं और भारतीय पारंपरिक जीवनशैली, संस्कार, पूजा-पर्व, आध्यात्मिक साधना और मोक्ष जैसे विषयों में गहन श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं। उनके कथानकों में आध्यात्मिक मार्ग की एक स्पष्ट रेखा उकेरी गई है। प्रोफेसर दाशरथ दास के अनुसार - "एक कथाशिल्पी के रूप में देवाशीष विवेकी, सहृदय, आत्मविश्वासी और पाठक के प्रति सद्भावी हैं। उनके आदर्शों में मर्यादा के साथ शिष्टता, कल्पनाशक्ति के साथ सृजनात्मक वेग, संगीतप्रेम के साथ प्रकृति-पर्यटन की प्रवृत्ति, प्रेम में जीवंतता के साथ सजीव विरह-चित्रण, पर्यवेक्षण क्षमता के साथ भावनात्मक गहराई और लघुकथा की एकाग्र शैली के साथ निबंध की तार्किकता और तथ्यात्मकता का सुंदर समन्वय निहित है। वे केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं रहते, बल्कि पाठकों को जीवन की नैतिक सच्चाई और सामाजिक उत्तरदायित्व की ओर उन्मुख करते हैं।"[4]

आध्यात्मिक खोज देवाशीष की रचनाओं का एक विशिष्ट और प्रमुख पक्ष है। एक सर्जनात्मक चेतना वाले रचनाकार के मन में बार-बार अनेक अनुत्तरित प्रश्न उठते हैं। मनुष्य यदि सांसारिक नहीं हो, तो वह जीवन के सुख-दुख, मोह-माया, उपलब्धि-अनुपलब्धि का अनुभव नहीं कर सकता; और यदि वह सन्यासी नहीं हो, तो वैराग्य, निर्लिप्तता, और तटस्थता जैसे भावों को आत्मसात नहीं कर सकता। लेखक के अनुसार - "सांसारिक होते हुए भी लेखक अथवा कवि अपनी सृजनशील चेतना में अनेक बार अतींद्रिय और अतिमानस अनुभव की खोज में प्रवृत्त होता है। वह देश-काल-पात्र की सीमाओं से ऊपर उठकर मानसिक, आध्यात्मिक और पाराभौतिक अनुभूतियों का अधिकारी बन जाता है।"[5]

इस दृष्टि से देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि देवाशीष के पात्र जीवन के मर्म की खोज में लगे रहते हैं। वे कभी मोह-माया में उलझते हैं, तो कभी उससे पूर्णतः विरक्त हो जाते हैं। कभी वे पश्चाताप में अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, तो कभी शून्यता में पूर्णता का अनुभव कर आत्मसमर्पण की ओर अग्रसर होते हैं। 'अभावित', 'प्रवज्या', 'जने नारी र आत्मकहानी', 'तथाकथित', 'बग और गेंदफूल', 'समय र अंधगली', 'परिव्राजक', 'अधालेखा गप' और 'काहिं मुक्ति' जैसी कहानियों में जीवन की गूढ़ता और रहस्यात्मकता एक-एक कर खुलती जाती है।'प्रवज्या' कहानी की नायिका सारदा नटराजन की कथा में समूची मानवता की कहानी की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। जीवन के दोराहे पर खड़ा हर व्यक्ति को एक दिन निर्णय लेना ही होता है - क्या वह जीवन के किनारे यूँ ही अनिर्णय की स्थिति में छिड़ा रहेगा, या फिर साहसपूर्वक संघर्ष की लहरों का सामना करेगा?ऐसी ही एक द्वंद्व की स्थिति में वह स्वयं को जगन्नाथ के ध्यान में डुबो देते हैं। जीवन रूपी अशांत समुद्र की विक्षुब्ध लहरों के बीच वे शांति और आत्मप्राप्ति की तलाश में संलग्न रहते हैं।

'जने नारी र आत्माकहानी ' कहानी में नायिका का भोग-विलासपूर्ण जीवन अंततः अकेलेपन की अमोघ बेड़ियों से बंधकर आध्यात्मिक पथ की ओर अग्रसर होता है। जीवन की अंतिम यात्रा में वह गंगातट पर एक अलौकिक अनुभव प्राप्त करती हैं। उस क्षण में, उनके भीतर अतीत की स्मृतियों से जुड़ी अनेक झलकियाँ - मातृभूमि, माता-पिता, प्रेमी, अनाथालय की यादें - सजीव होकर उभरती हैं। और वहीं वे प्रश्न करती हैं - "हे विराट आकाश, हे ब्रह्मांड, हे नागाधिप हिमालय, हे पतितपावनी गंगा! मुझे उत्तर दो - स्वाति किस नक्षत्र का नाम है?"

इसी प्रकार की एक प्रश्नात्मक मनःस्थिति में 'समय र अंधगली' का नायक अनिरुद्ध गाँव की मिट्टी से शुरू होकर अमेरिका की लिव-इन रिलेशनशिप तक जीवन की यात्रा तय करता है। वह यांत्रिक जीवन और छद्म दांपत्य से विरक्त होकर आत्मग्लानि और पश्चात्ताप की भावना के साथ पुनः अपने गाँव लौट आता है। जीवन की दीर्घ अनुभूतियों में वह माता-पिता का स्नेह, बड़े भाई का साथ, गायत्री से मधुर संबंध और दुर्घटनाओं की स्मृतियों में रमकर सम्पूर्ण जीवन का पुनरावलोकन करता है। अंततः वह अपने समस्त जीवनानुभवों और प्रेम को 'गायत्री मंत्र' में दीक्षित करने का दृढ़ निश्चय करता है।

छात्र जीवन से ही सांस्कृतिक प्रेरणाओं ने कथाशिल्पी देवाशीष को एक संगीतमय संवेदना से संपन्न बना दिया। 'गीतिका' शीर्षक से उनका एक सुंदर गीतिकाव्य प्रकाशित हो चुका है। पूजा, प्रेम, ऋतु, युगलबंदी और जीवन के विविध रंगों को लेकर लिखी गईं उनकी गीतिकविताएँ भाव, रस और सौंदर्य से परिपूर्ण हैं। यदि उनके कथा साहित्य का अवलोकन किया जाए, तो अनेक कहानियों में संगीत के प्रति न केवल गहरी श्रद्धा, अपितु आत्मिक संबंध भी दृष्टिगोचर होता है। कई कथाओं में हिन्दी और उर्दू ग़ज़लों की पंक्तियाँ सम्मिलित हैं, जो उनके अंतर्मन की संगीतशीलता को उजागर करती हैं।

उनके अनुसार - "साहित्य एक शब्दाधारित कला है, और संगीत, नृत्य, चित्रकला, स्थापत्य आदि के साथ इसका गहन संबंध है। ये समस्त कलाएँ भारतीय सृजनधारा का अंग हैं, जो 'सत्य, शिव और सुंदर' के आदर्शों से पोषित होती हैं। भारतीय सनातन दर्शन ही भारतीय सौंदर्यबोध और सृजन का आधार है। इसीलिए भारत की प्रत्येक कला - साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्रकला, स्थापत्य - भारतीय दर्शन से ही प्रेरित होती है और उसे एक समग्र दृष्टिकोण व चैतन्य प्रदान करती है।"[6]

इस विचार का उत्कृष्ट प्रतिबिंब उनकी कृति 'अधालेखा गप' में मिलता है। आज के युग में संगीत की उपेक्षा, संगीतसाधकों की आर्थिक तंगी और उनके संघर्षपूर्ण जीवन की त्रासदी अत्यंत मार्मिक रूप धारण कर चुकी है। अपनी कहानियों के माध्यम से देवाशीष ने अपने भीतर की करुणा, पीड़ा और संवेदनशीलता को शब्दों का रूप दिया है।

देवाशीष का कथा-जगत केवल ओडिशा तक सीमित नहीं है। उनकी रचनात्मक पृष्ठभूमि ओडिशा से आगे - असम, पंजाब से लेकर अमेरिका के कैलिफ़ोर्निया और न्यू मेक्सिको जैसे क्षेत्रों तक फैली हुई है। एक पुलिस अधिकारी के रूप में उन्होंने जहाँ-जहाँ कार्य किया, वहाँ की संस्कृति, इतिहास, भूगोल, साहित्य और समाज को निकट से समझा, उनका गहन अध्ययन किया और उन अनुभवों को अपने कथा-साहित्य में खूबसूरती से समाहित किया है। वे यह मानते थे कि यदि देश-विदेश में बसे प्रवासी ओड़िया अपने प्रवास की अनुभूतियों को ओड़िया भाषा में साहित्यिक रूप में अभिव्यक्त करें, तो इससे ओड़िया साहित्य और अधिक सर्वदेशीय, विविधतापूर्ण, बहुआयामी और समृद्ध बन सकता है। वे चाहते थे कि ओड़िया साहित्य महानदी और काठजोड़ी की भौगोलिक सीमाओं से निकलकर विश्व साहित्य के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ा हो, उसे एक सार्वभौमिक आयाम प्राप्त हो।इसी सोच के तहत उन्होंने अमेरिका से प्रकाशित ओड़िया पत्रिका 'प्रतिश्रुति' के संपादकीय दृष्टिकोण का खुले दिल से स्वागत किया। इस पत्रिका के संपादक सत्य पटनायक का मानना था - "अगर ओड़िया लोग मिसिसिपी, अमेज़न या नील नदी के तट पर भी जा बसे हैं, तो उनकी जीवन-कथाएँ भी ओड़िया साहित्य का हिस्सा होनी चाहिए। जब हम कोरापुट के हल्दी बागानों की बात करते हैं, तो फिर फ्लोरिडा के संतरे के बागान या कैलिफ़ोर्निया की अंगूर की बेलों को कैसे भूल सकते हैं? वहाँ भी हमारे ओड़िया लोग बसते हैं। जब बेंगलुरु के ओड़िया प्रवासी मज़दूरों की कहानी कही जाती है, तो अफ्रीका की खदानों में काम कर रहे ओड़ियाओं की गाथा भी साहित्य में आनी चाहिए। उपन्यास, कहानियाँ और कविताएँ - इन सबमें प्रवासी ओड़ियाओं की आवाज़ भी सुनाई देनी चाहिए। यही ओड़िया साहित्य को एक वैश्विक स्वरूप देने की दिशा में ठोस कदम होगा, और इसमें कोई संदेह नहीं।"[7] इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए कथाकार देवशीष पात्र नेओड़िशा और भारत से बाहर की पृष्ठभूमियों को लेकर कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं।

उनकी कुछ कहानियों में स्थान विशेष का उल्लेख ध्यान आकर्षित करता है: 'बग ओ गेण्डुफूल' में अमेरिका और दुबई,'काहिं मुक्ति' में मुंबई महानगर और देवभूमि तिरुपति,'अधालेखा गप' में वाराणसी की संगीत साधना, 'संतान' में मणिपाल विश्वविद्यालय, 'चित्रांगदा को चिट्ठी' और 'प्रेम पाई दिन टिए' में लंदन की झलक, और 'सीमांत यात्रा' में पंजाब का चित्रण है। विदेशी पृष्ठभूमि पर आधारित उनका चर्चित उपन्यास 'पतर फांक रे सूर्य' विशेष उल्लेखनीय है। प्रसिद्ध ओड़िया उपन्यासकार विभूति पटनायक ने इसे पढ़ने के बाद कहा: "उनकी कहानियों से अधिक मुझे उनके उपन्यास ने आकर्षित किया। लंदन के कैंब्रिज विश्वविद्यालय की पृष्ठभूमि पर लिखा गया 'पतर फांक रे सूर्य' पढ़कर मुझे विश्वास हो गया कि अगर वे अपनी साहित्यिक साधना को यूँ ही जारी रखें, तो वे समकालीन ओड़िया उपन्यास, जो आज रक्तहीनता से जूझ रहा है, उसमें नया रक्त प्रवाहित कर सकते हैं। मेरे लिए वे ओड़िया उपन्यास लेखन में एक स्वर्णिम संभावना से भरपूर लेखक हैं।"[8] इस उपन्यास की कथा में लेखक ने तीन मार्मिक यथार्थचित्र प्रस्तुत किए हैं: पहला कैंब्रिज की एक सर्द शाम को फुटपाथ पर कंबल बिछाकर अपने लंबे बालों वाले कुत्ते के साथ बैठी एक युवती, जो बाँसुरी बजा रही है। उसकी बाँसुरी की ध्वनि जैसे किसी वन प्रदेश से आ रही हो - कोमल, करुण और हृदयभेदी। दूसरा है लंदन के उपनगर लूटन स्थित एक हिंदू मंदिर में चार भारतीय वृद्ध, चाय की प्याली के साथ ताश खेलते हुए - जो प्रवासजनित अकेलेपन को सांझा कर रहे हैं। तीसरा है स्कॉटलैंड की राजधानी एडिनबरा के बस स्टेशन पर एक सर्द संध्या में, फास्ट फूड दुकान के सामने बैठा एक बंगाली, चाय और समोसे के साथ। इस उपन्यास में लेखक ने यह दिखाया है कि प्रवासी किस प्रकार परदेश की धरती पर रहकर, संस्कृति और जड़ों से जुड़ाव बनाए रखते हुए, अकेलेपन से लड़ते हैं।

कहानीकार देवाशीष पाणिग्राही पारिवारिक, सामाजिक, और बौद्धिक जीवन की गहरी समझ रखते थे। उनके व्यक्तित्व की गंभीरता, स्पष्टवादिता, ईमानदारी और सहृदयता उनके कथानकों के पात्रों में झलकती है। जिस तरह वे स्वयं एक उदारहृदय व्यक्ति थे, उसी प्रकार उनके पात्र भी शांत, स्थिरचित्त और उदात्त स्वभाव के होते थे। यही कारण है कि उनकी कहानियों में शायद ही कोई खलनायक देखने को मिलता है। उनके हर पात्र में मानवीय गुणों की स्पष्ट छाया होती है। वे जीवन की विविध घटनाओं और दुर्घटनाओं का सामना करते हुए भी स्थिरबुद्धि और शांति बनाए रखते हैं। देवाशीष के कई पात्रों को उन्होंने स्वयं देखा था या उनसे कभी संक्षेप में या दीर्घकालिक रूप से मिले थे। कभी-कभी ऐसी संक्षिप्त मुलाक़ातें उनके अंतर्मन को इस गहराई से छू जाती थीं कि वह छवि उनके विचार-जगत को घेर लेती थी, और वही पात्र बाद में कहानी का रूप ले लेता था। उनके शब्दों में -"शुरुआत में जो चेहरा धुंध और धूसरता से घिरा दिखता है, वही धीरे-धीरे कहानी के रेखाचित्र गढ़ते समय स्पष्ट होता जाता है। और जब वह पात्र संपूर्ण जीवनरेखा के साथ सजीव हो उठता है, तब वह सदा-सदा के लिए स्मृतिपटल पर अमिट छवि बन कर रह जाता है। हाँ, कभी-कभी लाख

कोशिशों के बावजूद उसका चेहरा आख़िर तक धुंधलाया, अस्पष्ट और रहस्यमय ही रह जाता है।"[9] ऐसा ही एक अनोखा पात्र है 'अभावित' कहानी का दंडपाणि पात्र उर्फ़ नांडू। लेखक ने इस पात्र से कभी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भेंट नहीं की थी, परंतु किसी अन्य व्यक्ति से सुनी बातों के आधार पर उसकी एक गूढ़ छवि अपने मन में गढ़ ली और उसे अपने नायक के रूप में कथा में उतार दिया। यह नांडू ही है जो उनकी कथासृष्टि के असंख्य पात्रों में से संभवतः सर्वश्रेष्ठ है - जिसे उन्होंने स्वयं काल्पनिक होते हुए भी सच्चा माना है। [10]

सामान्यतः एक कथाकार कथानक, शैली और अंत की कल्पना कर कहानी रचता है। किंतु कुछ रचनाकार बिना पूर्व योजना के भी कहानी लिखना शुरू कर देते हैं। देवाशीष पाणिग्राही दूसरे प्रकार के रचनाकार थे - वे बिना किसी तय अंत की चिंता किए, जब कोई विशेष घटना, दृश्य, भावना या अनुभव उनके भीतर गहराई से उतर आता, तब वे उसी आत्मविभोरता और मानसिक तन्मयता में कहानी रचने लगते - यह बात उन्होंने स्वयं स्वीकार की है। उनकी कहानियों में प्रथम पंक्ति का अत्यंत महत्त्व था। उसे गढ़ने में उन्हें अक्सर बड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। यदि ध्यान दिया जाए, तो उनकी कहानियों की शुरुआती पंक्ति ही इतनी आकर्षक होती है कि पाठक स्वतः उसमें खिंचा चला आता है। इसी प्रकार की सम्मोहक शुरुआतें सुरेन्द्र महांति की कहानियों में भी देखी गई हैं।

यहाँ देवाशीष की कुछ उल्लेखनीय आरंभिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं:

1. "उम्र बढ़ने के साथ सच कहने का साहस कम होता जाता है।" (अपह, संग्रह: अन्यमनस्क)
2. "दिन था, अकेले रहना कुछ ज़्यादा ही अच्छा लग रहा था।" (अनुच्चारित, अन्यमनस्क)
3. "अब शायद ज़्यादा दिन नहीं बचे हैं।" (कलाहरण, अन्यमनस्क)
4. "ये कहानी मेरी नहीं, किसी और की है।" (अभावित, द्राघिमा)
5. "लड़कियाँ बहुत जल्दी बड़ी हो जाती हैं।" (जने नारी र आत्मकहानी)
6. समय धीरे-धीरे बीत रहा है। (समय र अंधगली)
7. नए साल में इस बार बधाइयाँ बेहद कम मिलीं। (नुआं वर्ष)

इन पंक्तियों को देखकर पता चलता है कि कथाकार देवशीष ने अपनी कहानी में कथावस्तु को विस्तार से प्रस्तुत किया, फिर भी शुरुआत चुंबक की भांति पाठक को खींचती है तथा आकर्षक थी। कहानी की पहली पंक्ति ही पाठक को बाँध लेने वाली थी। इस कारण पाठक सहज ही कहानी में रम जाता है और पूरी कहानी पढ़ने की इच्छा रखता है। जहाँ कहानी की शुरुआत आकस्मिकता से होती है, वहीं अंत भी अप्रत्याशित होता है। लंबी व्याख्या के बाद एक निश्चित मोड़ पर कहानी समाप्त होती है। इस तरह आकस्मिक शुरुआत और आकस्मिक अंत पाठक के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं, जो कहानी की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। वे अपनी जिंदगी के अनुभव और उपलब्धियां तो कहानी में रखते हैं, लेकिन उन्हें खुलकर प्रकट नहीं करते। इसे पाठकों के समझने पर छोड़ देते हैं।

देवशीष के कथासाहित्य के नामकरण पर गौर करें तो पता चलता है कि वे सौंदर्यबोध के प्रति सजग थे। इसलिए वे अपने कथाशिल्प के नाम सोच-समझकर, काव्यात्मक, सरल और यादगार रखते थे। 'अ' अक्षर के प्रति उनका विशेष लगाव था। इसलिए उन्होंने अपनी पुस्तकों के नाम 'अतीन्द्रिय', 'अन्यमनस्क', 'अभिभावक', 'अनामिका', 'अयमारम्भ' जैसे रखे। इसके अलावा वे नामों को कम शब्दों में सीमित रखते थे, अक्सर तीन-चार या पांच शब्दों के भीतर। उपन्यासों के नामों में भी एक काव्यात्मक भाव होता था, जो उनके भीतर के कवि मन को दर्शाता है। ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि जैसे फकीरमोहन की कहानियों में कथकीय गुण होता है, वैसे ही देवशीष की कहानियों में भी आधुनिक युगबोध और शब्द विन्यास के माध्यम से कथकीय गुण दिखाई देता है। उनकी पहली कहानी पढ़कर यह शुष्क और बेरंग लग सकती है, लेकिन उनकी निष्ठा, मननशीलता के साथ उनकी पेशा, व्यक्तित्व और कहानी-इन तीनों को ध्यान में रखकर पढ़ें तो पता चलेगा कि वे मानसिक रूप से बहुत उच्च स्तर पर हैं। इसलिए कभी-कभी पाठकों को उनकी सोच के समकक्ष आना आवश्यक होता है। "एक कहानी को प्रस्तुत करते समय वे मुख्य कथा के साथ-साथ सहायक कथाएँ और अप्रकाशित विषयों को भी पूरी गंभीरता से महत्व देते हैं। इसलिए मुझे लगता है कि देवशीष की कहानियाँ टॉर्च लाइट की तरह सिर्फ एक जगह को ही नहीं, बल्कि उसके आसपास के क्षेत्र को भी प्रकाशित करती हैं। साथ ही, वे अपनी कहानियों को अपने अनुभव, ज्ञान और बुद्धि की ताकत से इतनी परिष्कृत और निपुणता से प्रस्तुत करते हैं कि ऐसा लगता है कि वे एक निर्माता कलाकार (Making Artist) हैं और उनकी कहानियाँ एक कलाकृति (Making Art/Craft) हैं।"[11] हालाँकि वे इस बात को अस्वीकार करते हैं और कहते हैं - "मेरे लिए कहानी लिखना ज्यादा कला नहीं, कम कौशल, ज्यादा मन की बातें हैं, मस्तिष्क की कोई जादूगरी नहीं, ज्यादा आर्ट है और कम क्राफ्ट है।"[12] इसलिए वे कहानी की भाषा, शैली, आत्मा और तकनीक जैसी बातों को आलोचना के लिए छोड़ देते हैं।

कथाकार देवशीष पाणिग्रही के सामाजिक, साहित्यिक और व्यक्तिगत जीवन के बीच कोई फर्क नहीं है। उनके व्यक्तिगत जीवन में जो खोजें और उपलब्धियाँ थीं, और जिन बौद्धिक सवालों का वे सामना करते थे, वे सभी उनके कथालेखन में प्रतिबिंबित होते हैं। वे अपनी कहानियों में एक समग्र विचारधारा और मूल्य प्रस्तुत करना चाहते थे, जो हमेशा प्रासंगिक, नया और युग के अनुरूप हो। यही उनके कथालेखन की सबसे बड़ी खासियत

है। उनकी अधिकतर कहानियाँ आत्मकथ्यात्मक शैली में लिखी गई हैं, लेकिन ये कहानियाँ समाज, सभ्यता और नैतिकता के आधार पर निर्मित हैं। उनका साहित्य वैश्विक प्रवाहों के साथ तालमेल बिठाकर प्रवाहित होता है। उनकी रचनाओं में इतिहास, भूगोल, विज्ञान, पर्यावरण, परंपरा और संस्कृति जैसे विषयों का समृद्ध समावेश है, और वर्णन में विविधता के साथ-साथ गहरी भावनात्मक प्रवृत्ति भी पाई जाती है। उनकी कहानियों में पाठक को भावनाओं, अनुभवों और तथ्यात्मक सामग्री का ऐसा संयोजन मिलता है जो समय के साथ संगत और तर्कसंगत होता है। ये सभी तत्व एकसाथ मिलकर एक समग्र और सशक्त कथा प्रस्तुत करते हैं। इसलिए मैं देवशीष की कथा कला में एक अनूठी शैली महसूस करता हूँ, जो समकालीन अन्य कथाकारों से अलग है और जो मुझे पूरी तरह प्रभावित और आश्चर्यचकित करती है।

सन्दर्भ

1. मुं कहिंकि लेखे, जीवन, संपर्क साहित्य - पृ. 80
2. मुं कहिंकि लेखे, जीवन, संपर्क साहित्य - पृ. 80
3. बग ओ गेण्डुफूल, द्राघिमा, पृ. 113
4. देवाशीष: अधालेखा गप, पृ. ३१
5. जी.सं.सा., पृ. ९२
6. जी.सं.सं. पृ. 96
7. प्रतिश्रुती, जून, 2005, संपादकीय
8. अधालेखा गप, पृ. 25
9. जी.सं.सा., पृ. ८७
10. जी.सं.सा., पृ. ९०
11. शरत कुमार जेना, अधालेखा गप, पृ. 189
12. मो पाईं गप र माने कण, जीव:संग:सा, पृ. 83

■■■